ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-1, No.-1, **PP-280-291**, YEAR-2014

ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन के अन्तर्गत 1773 ई0 का रेग्युलेटिंग ऐक्ट

❑ **डॉ0 कृष्णकान्त**

सार– *यद्यपि भारत के संवैधानिक विकास का प्रारम्भ हम 1773 ई0 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट से देखते हैं, परन्तु उससे पूर्व कम्पनी द्वारा जो संवैधानिक कार्य किये गये, उसे हम कंपनी की स्थापना के 1600ई0 के चार्टर से ही देख सकते हैं, 'जिसमें कि महारानी एलिजाबेथ ने अंग्रेज व्यापारियों के एक समूह को, जो कि कम्पनी ऑफ लन्दन मर्चेन्ट के नाम से जानी जाती थी, को पूर्व से व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की।'भारतीय संवैधानिक ढाँचा अंग्रेजी आदर्शों पर निर्मित है, जिसकी स्थापना एवं विकास का प्रारम्भ 1600 ई0 के ब्रिटिष ताज के इसी चार्टर द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ ही हुआ था। इस आज्ञापत्र द्वारा कम्पनी को एक निगमित स्वरूप व न्यायिक व्यक्तित्व प्रदान हुआ व कम्पनी को ईस्ट इंडीज लोगों के साथ व्यापार करने की एकांतिक सुविधा उपलब्ध हुई।*

प्रस्तावना– लॉर्ड नॉर्थ द्वारा 18 मई, 1773 ई0 को हाउस ऑफ कॉमन्स में ईस्ट इण्डिया कम्पनी रेग्युलेटिंग बिल प्रस्तुत किया गया, जो 10 जून व 19 जून को क्रमषः हाउस ऑफ कॉमन्स व हाउस ऑफ लार्ड द्वारा पास कर दिया गया तथा 1773 ई0 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐक्ट का मुख्य उद्देष्य भारत के प्रषासन में सुधार व कंपनी का संवैधानिक विकास था। इतिहासकार सी0एल0 आनंद का मत है – "यद्यपि यह कम्पनी की प्रषासनिक व्यवस्था में व्याप्त दोषों को पूरी तरह ठीक नहीं कर पाया, तब भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।"

भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों की वृद्धि के साथ षासन – सुधार भी हो रहे थे। इस विषय में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने सन् 1773 से लेकर सन् 1909 तक कई ऐक्ट पास किये, जिनमें सबसे पहला 1773 ई0 का रेग्युलेटिंग ऐक्ट था। इतिहासकार कन्हैया लाल वर्मा का मत है –

"भारतीय शासन विकास इसी ऐक्ट से आरंभ होता है। इसके पश्चात् सन् 1781 का संशोधन ऐक्ट, सन् 1784 का पिट्स इण्डिया ऐक्ट और सन् 1793, 1813, 1833 और 1853 के चार्टर ऐक्ट पास हुए।"

जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी व कुछ क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त हो गया, तो इग्लैण्ड की सरकार भी भारतीय विशयों पर ध्यान देने लगी। पार्लियामेण्ट के सदस्यों को कम्पनी के शासन में दोष स्पष्ट दिखने लगा और उन्हें कम्पनी पर संसद का नियंत्रण आवश्यक लगने लगा। इतिहासकार जय नारायण पाण्डेय का मत है – "इसके अतिरिक्त कम्पनी के बढ़ते हुए वैभव को देखकर उनको कम्पनी के राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।"

कम्पनी के मामलों की जाँच के लिए ब्रिटिश संसद ने एक समिति को नियुक्त किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में कम्पनी के प्रशासन में अनेक त्रुटियां दिखाईं और उसके शीघ्र सुधार का सुझाव दिया। फलतः ब्रिटिश संसद ने 1773 ई0 का रेग्युलेटिंग ऐक्ट पारित किया।

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी, जो ताज से मंजूरी लेकर पूर्वी देशों से व्यापार करती थी। किन्तु भारत में कम्पनी ने कई इलाके जीतकर उन पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी और कम्पनी इस इलाके पर एक सर्व सत्ताधारी राजनीतिक संस्था के नाते शासन भी चला रही थी।

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0), भारत

यह स्थिति ब्रिटिश राजनीतिक नियम के विरूद्ध थी, क्योंकि कोई भी संस्था निजी तौर पर किसी इलाके पर शासन नहीं चला सकती, जिस पर शासन चलाने की शक्ति ब्रिटिश ताज द्वारा उस संस्था को न दी जाए। इसलिए इग्लैण्ड में कम्पनी की इस अवैधानिक स्थिति की कड़ी चर्चा होने लगी और पार्लियामेण्ट में बार – बार इस प्रकार के प्रष्न उठने लगे कि क्या एक व्यापारिक कम्पनी को अपने आप राजनीतिक सत्ता को धारण करने का अधिकार मिल सकता है।'' इस संवैधानिक समस्या को हल करने के दो उपाय ब्रिटिश सरकार के समक्ष थे – एक तो ये कि सरकार उन भारतीय प्रदेशों को अपने कब्जे में ले ले, जिन पर कम्पनी का अधिकार था और दूसरा ये कि सरकार कम्पनी को अपने अधिकार से स्वतंत्र कर दे, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से ये दोनों ही बातें उचित नहीं थीं।

बंगाल में द्वैध षासन के चलते अत्यन्त अव्यवस्था फैली हुई थी और कम्पनी के कर्मचारियों की लूटमार के कारण वहां की जनता अनेक विपत्तियों से घिर गयी थी। अंग्रेज नवाबों, मजिस्ट्रेटों, पुलिस, राजस्व अधिकारियों, सभी के द्वारा भ्रष्टाचार फैलाया जा रहा था। लैकी ने इस स्थिति का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है – ''इसके पूर्व भारतीयों ने इतने बुद्धिमत्तापूर्ण, खोजपूर्ण तथा दृढ़ अत्याचार का अनुभव नहीं किया था। सबके सब जिले जो घनी आबादी वाले तथा समृद्धशाली थे, अन्ततः पूर्णरूप से जनसंख्या रहित कर दिये गये। यह देखा गया कि कुछ और व्यापारियों के एक दल के आने पर ग्राम शीघ्र ही खाली हो गये, दुकानें बंद हो गयीं, सड़कें भयभीत निश्क्रमणार्थियों से भर गयीं।'' ऐसी ही स्थिति में बंगाल में 1770 ई0 का दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे स्थिति और भी दयनीय हो गयी व कम्पनी के हाथों से बाहर हो गई। लगभग 1/5 भाग जनसंख्या काल को ग्रसित हो गई, कम्पनी ने अपने घाटे को, जो कि दुर्भिक्ष के कारण हुआ था, दैनिक वस्तुओं के दाम व टैक्स में वृद्धि करके पूरा करने का प्रयत्न किया। इन्हीं कारणों से ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप की कार्यवाई अनिवार्य समझी।

कम्पनी के कर्मचारियों को भारत में निजी व्यापार करने का अधिकार था, इसके चलते कम वेतन पाने वाले कर्मचारी भी इंग्लैण्ड में जाकर बहुत ही ठाठ–बाट से रहते थे, क्योंकि वे अपने नाम से देशी व्यापारियों का सामान बिना चुंगी दिये मंगवा लेते थे और व्यापारी लोग उनको इसके बदले रिश्वत के रूप में धन देते थे। कम्पनी के कर्मचारी अपने लालच के चलते भारतीय जनता को अत्यधिक कष्ट पहुंचाते थे व उनसे जबरन धन वसूली करते थे। उनका तो ये उद्देश्य रहता था कि ''येनकेन प्रकारेण भारत से विपुल धन एकत्रित करके शीघ्रातिशीघ्र इंग्लैण्ड कैसे वापस लौटा जाए।''

कम्पनी भारत से कमाई अकूत सम्पत्ति का कुछ भाग इंग्लैण्ड में संसद के निर्वाचन में खर्च कर देती थी, जिससे कि वहां का राजनीतिक वातावरण दूशित हो रहा था। यही कारण था कि ब्रिटिश जनता चाहती थी कि कम्पनी के विषयों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण हो। इतिहासकार आर0 एन0 मिश्रा का मत है – ''उस काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मुगल सम्राट से ही दीवानी और व्यापार की सनद प्राप्त की थी। इसलिए यदि ब्रिटिश सरकार अपने हाथों में कम्पनी के षासन को ले लेती तो उसका परिणाम यह होता कि सैद्धान्तिक दृष्टि से ब्रिटिश सरकार भी मुगल – सम्राट की अधीनता में आ जाती।'' किन्तु इसके साथ यह भी सम्भव नहीं था कि सरकार कम्पनी को राजनैतिक एवं प्रशासनिक छूट दे दे। इस समस्या को सुलझाने का एक ही तरीका था और वह यह कि कम्पनी की राजनैतिक प्रगति पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण स्थापित हो जाए।

1769 ई0 के युद्ध में, जो कि कम्पनी व मैसूर के शासक हैदरअली के बीच हुआ था, कम्पनी को पराजित होकर हैदर अली की शर्तों को मानना पड़ा, जो कि इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा पर धब्बा लगने की बात थी। अतः इंग्लैण्ड की सरकार के लिए आवश्यक हो गया कि वो कम्पनी की नीतियों पर नियंत्रण स्थापित करे।

क्लाइव को 1765 ई0 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। एक अनुमान के अनुसार उस समय 40,00,000 पौण्ड प्रतिवर्ष बंगाल से राजस्व का अधिग्रहण होगा और इस एक वर्ष में कम्पनी जो धन व्यय करेगी, यदि उसको अलग कर लिया जाय तो 1,65,000 पौण्ड की धनराशि शेष बचेगी। कम्पनी के मालिक (प्रोपराइटर) भी लाभांश बढ़ाने की मांग करने लगे, जिससे लाभांश की दर को 6 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत करना पड़ा और अगले ही वर्ष इसे 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 12) प्रतिशत कर दिया गया। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सदस्य भी इसमें से कुछ हिस्सा चाहते थे। इसके फलस्वरूप "1767 ई0 में कम्पनी तथा ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के बीच एक ऐक्ट पास करके यह समझौता हुआ कि कम्पनी भारतीय इलाकों पर अपनी सत्ता जारी रखेगी और इसके बदले में वह ब्रिटिश सरकार को 4 लाख पौण्ड प्रतिवर्ष कर देगी।" इतिहासकार विष्णु भगवान का मत है – "इस प्रकार दीवानी अधिग्रहण के दो वर्ष के भीतर ही ब्रिटिश सरकार ने खुले आम कम्पनी के मामलों में हस्तक्षेप प्रारम्भ कर दिया और लूट के माल में अपना हिस्सा निश्चित कर दिया।" किन्तु ये अनुमान मिथ्या साबित हुए जब "कम्पनी ने ब्रिटेन की सरकार से 1 करोड़ रूपये का कर्ज मांगा। ब्रिटेन की सरकार उसी हालात में कर्ज देने को तैयार हुई, जब वह कम्पनी के मामलों की उचित को तैयार हुई, जब वह कम्पनी के मामलों की उचित छानबीन कर ले।" इस तरह से ब्रिटिश सरकार को उसके कार्यों में हस्तक्षेप करने का मौका मिला। तब ब्रिटेन की सरकार ने सेलेक्ट कमेटी तथा सीक्रेट कमेटी नाम की दो समितियां ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों की जांच–पड़ताल करने के लिए नियुक्त कीं। कम्पनी के प्रशासन को जिम्मेवार ठहराते हुए सेलेक्ट कमेटी ने 12 रिपोर्टें सरकार के समक्ष प्रस्तुत कीं, "उधर सीक्रेट कमेटी ने भी कम्पनी के शासन व्यवस्था व न्याय संचालन का भंडाफोड़ कर दिया, जिससे रेग्युलेटिंग ऐक्ट के विधान में सारी बातों को दूर करने का प्रयास किया गया। जितनी सूचना इस सीक्रेट कमेटी को प्राप्त हो सकी थी, उसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता था कि मुगल साम्राज्य की प्रजा को इन अदालतों से कोई सुरक्षा या संरक्षण नहीं मिल सका था। न्यायालयों का एक ढांचा यद्यपि स्थापित व निर्धारित अवश्य किया गया था, फिर भी यह व्यवस्था सरकार के लिए शक्ति का स्रोत अधिक थी, जनता के लिए न्याय का स्रोत कम। इनसे इतना ही नहीं कि लोगों को न्याय मिल पाया हो, बल्कि और भी अधिक बात यह थी कि कभी–कभी न्याय एवं निर्णय के लबादे में कठोरतम एवं निकृष्टतम अत्याचार भी कर दिया जाता था।" इन रिपोर्टों के आधार पर 18 मई, 1773 को ब्रिटिश संसद के समक्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी बिल पेश किया गया।

ब्रिटेन की संसद ने एक बहुत बड़े बहुमत के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी बिल पास कर दिया। जिसका मूल उद्देश्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा शासित भारतीय प्रदेशों की शासन – व्यवस्था में सुधार करना तथा कम्पनी के प्रशासन पर अच्छी तरह नियंत्रण स्थापित करना था। इसके साथ ही संसद कम्पनी से जो 4 लाख पौण्ड की धनराशि खिराज के रूप में वसूलती थी, उस को लेना बंद कर दिया। कम्पनी को 14 लाख पौण्ड का ऋण 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर पर उपलब्ध करा दिया गया और उसे लाभ के 6 प्रतिशत से अधिक लाभांश दर देने से मना कर दिया गया और इसे एक अलग ऐक्ट के रूप में पास कर दिया गया। 1773 ई0 में पारित इस अधिनियम का शीर्षक इस प्रकार था – "भारत और योरोप में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उचित प्रबन्ध के लिए कुछ नियंत्रणों को निश्चित करने के लिए एक अधिनियम।" इस ऐक्ट के द्वारा ब्रिटेन की संसद कम्पनी के कृत्यों पर भारत एवं इंग्लैण्ड दोनों ही जगहों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहती थी। यह नियंत्रण वह तभी रख सकती थी, जब कम्पनी पर राजपत्रों (चार्टर) के द्वारा संसदीय नियंत्रण बनाया जाये और दूसरा न्याय प्रशासन की समुचित व्यवस्था की जाए। इस कार्य सिद्धि के लिए ब्रिटेन की संसद ने रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अन्तर्गत निम्नलिखित उपबन्धों

को संलग्न किया–

"सर्वप्रथम इस ऐक्ट द्वारा द्वैध शासन प्रणाली खत्म कर दी गई और षासन संचालक की नई व्यवस्था की गई।" सन् 1773 ई0 के पूर्व की स्थिति में प्रेसीडेन्सियों में गवर्नर एवं काउंसिलें स्वतन्त्र थीं। उन्हें सीधे कोर्ट ऑफ डायरेक्टर को ही जवाबदेही देनी होती थी, परन्तु 1773 के ऐक्ट ने इस स्थिति में संशोधन किया। मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को निर्देश दिया गया कि "वे कलकत्ता के गवर्नर जनरल के अध्यादेशों व आदेशों को उचित सम्मान दें। सुप्रीम गवर्नमेंट किसी भी व्यक्ति को आज्ञा – उल्लंघन व अनुशासन के अपराधों में पदच्युत कर सकती थी।" इस प्रकार से "इस अधिनियम द्वारा भारत में कम्पनी सरकार का पुनर्गठन किया गया। बंगाल के गवर्नर का पद गवर्नर जनरल के रूप में बदल दिया गया तथा मद्रास एवं बम्बई के गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया। गवर्नर – जनरल को देश – विभागों की सरकारों के कार्यों पर निगरानी रखने तथा आवश्यकतानुसार उनको आज्ञाऐं देने की शक्ति प्रदान की गयी। मद्रास एवं बम्बई के गवर्नरों को गवर्नर जनरल या संचालकों की पूर्व अनुमति के बिना युद्ध की घोषणा करने (जब तक कि परिस्थितियां उन्हे बहुत अधिक विवश न करें) या संधि करने या देशी शासकों से सम्बन्ध स्थापित करने की मनाही कर दी गयी।" उसे यह अधिकार भी प्रदान किया गया कि आवश्यकता पड़ने पर वह मद्रास और बम्बई प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर तथा उसकी परिषद को निलम्बित कर दे। गवर्नर – जनरल और उसकी परिषद की शक्तियों के सम्बन्ध में बनर्जी ने कहा – "उन्हें मद्रास, बम्बई और साथ ही बैन्कूलन की प्रेसीडेन्सियों की सरकारों और प्रशासनिक व्यवस्था को निर्देशित और नियंत्रित करने का अधिकार प्रदान किया गया।" गवर्नर जनरल को अर्द्ध स्वायत्ता प्रदान करते हुए उसकी सहायता के लिए चार सदस्यों वाली एक परिषद स्थापित की गई थी। इस विषय में इतिहासकार जय नारायन पाण्डेय का मत है – "इस संस्था द्वारा भारत में एक निश्चित शासन पद्धति का प्रारम्भ होता है।" परिषद के सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष निश्चित किया गया, परन्तु सम्राट द्वारा संचालक मण्डल के सिफारिश करने पर उन्हें हटाया भी जा सकता था। संचालक मण्डल के पास परिषद में रिक्त स्थान को भरने का अधिकार था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट की धारा 9 में उल्लिखित किया गया – "कलकत्ता की सुप्रीम गवर्नमेण्ट के प्रथम गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद के चारों सदस्यों की नियुक्ति रेग्युलेटिंग ऐक्ट द्वारा ही कर दी गई थी। वारेन हेस्टिंग्स (जो कलकत्ता की सपरिषद – राज्यपाल का गवर्नर था) को ही प्रथम गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया तथा मॉनसन, क्लेवरिंग, वॉरवेल तथा फ्रेंसिस उसकी परिषद के सदस्यों के रूप में नियुक्त किये गये थे। गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद के सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्षों का रखा गया तथ यह अवधि समाप्त होने के पूर्व उन्हें उनके पद से हटाया नहीं जा सकता था। परन्तु इंग्लैण्ड के सम्राट को यह अधिकार था कि वह कम्पनी के संचालकों की प्रार्थना पर उनमें से किसी को भी पद से हटा सकता था। गवर्नर जनरल की अनुपस्थिति अथवा मृत्यु की स्थिति में परिशद का वरिष्ठतम सदस्य अवशिष्ट अवधि तक गवर्नर जनरल का कार्यभार संभालता था तथा कार्यकाल पूर्ण हो जाने पर कम्पनी के संचालकों द्वारा नये गवर्नर जनरल की नियुक्ति की जाती थी।"

परिषद की कार्याविधि बहुमत के आधार पर संचालित होनी थी अर्थात परिषद के समक्ष प्रस्तुत होने वाले मामलों पर निर्णय बहुमत के आधार पर होने थे। गवर्नर जनरल को अपनी परिषद के बहुमत को मानना पड़ता था और वह परिषद द्वारा लिए गये निर्णयों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। इतिहासकार योगेन्द्र मलिक एवं आर0 एल0 भाटिया ने लिखा है – "गवर्नर जनरल को कौन्सिल के अनेक ऐसे निश्चयों को लागू करना पड़ा, जिससे वह सर्वथा असहमत होता और जिन्हें लागू करना वह बिल्कुल पसंद नहीं करता था। कौन्सिल के तीन मेम्बर इंग्लैण्ड से आये थे और वे कम्पनी के सभी

अधिकारियों को रिश्वतखोर व भ्रष्ट समझते थे। इसीलिए वे गवर्नर जनरल व उसके सहयोगियों का सभी महत्वपूर्ण मामलों में विरोध किया करते थे। पारस्परिक विरोध के कारण गवर्नर – जनरल व उसकी कौन्सिल कभी भी शान्ति से काम न कर सके।'' परिषद में मतों के बराबर होने की दशा में ही गवर्नर जनरल अपना निर्णायक मत दे सकता था। चूंकि गवर्नर जनरल बहुमत के निर्णय को मानने के लिए बाध्य था, इसलिए यदि कोई भी तीन सदस्य गवर्नर जनरल के विरूद्ध संगठित हो जाते तो वे उसकी इच्छा के विरूद्ध कार्यों को मनमाने ढंग से अंजाम दे सकते थे, क्योंकि परिषद के सदस्यों की संख्या चार थी। इतिहासकार रवीन्द्र नाथ मिश्रा ने लिखा है – ''कम्पनी के कर्मचारियों की पैसे की कमी को पूरा करने और उनमें सच्चाई और ईमानदारी लाने के लिए उनके वेतनों में वृद्धि कर दी गई। गवर्नर जनरल का वार्षिक वेतन 25,000 पौण्ड और उसकी परिषद के सदस्यों का वार्षिक वेतन 10,000 पौण्ड नियत किया गया।''

''सपरिषद गवर्नर जनरल को अच्छी व्यवस्था और नागरिक शासन के लिए नियम, विनियम बनाने और अध्यादेश जारी करने की शक्ति दी गई। किन्तु यह नियम तभी प्रभावशाली होते थे, जबकि उनकी नवस्थापित सर्वोच्च न्यायालय से रजिस्ट्री हो जाती थी और वे न्यायालय द्वारा प्रकाशित किये जाते थे।'' सपरिषद गवर्नर जनरल कम्पनी के अधीन आने वाले प्रदेशों के लिए नियम और अध्यादेश बना सकता था। सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा बनाये गये अधिकारों को लागू करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया था। इन अध्यादेशों व नियमों को रद्द करने का अधिकार ब्रिटिश सम्राट तथा उसकी कार्यपरिषद को था। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, परिषद के सदस्यों तथा कम्पनी के कर्मचारियों को मनोनित करने का अधिकार ब्रिटेन के सम्राट को प्रदान कर दिया गया था। इस प्रकार से कम्पनी प्रत्यक्ष रूप से सम्राट के पूर्ण नियन्त्रण में आ गई।

''रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार, सारे सिविल और सैनिक विषयों से सम्बन्धित मामले भारत सचिव के पास रख जायेंगे और भारत राजस्व से सम्बन्धित सारे मामले ट्रेजरी (वित्त – मंत्रालय) के पास भेजे जायेंगे।'' ''राजस्व से सम्बन्धित सारे पत्र व अन्य दस्तावेज, जो भारतीय सरकार अर्थात गवर्नर – जनरल से प्राप्त हों, उनकी प्रतिलिपि ट्रेजरी को देना अनिवार्य कर दिया गया। इसी तरह सिविल या मिलिट्री प्रशासन से आये पत्रों की प्रतिलिपियां सम्बन्धित सेक्रेटरी को भेजना आवश्यक बना दिया गया। इस तरह संसद का कोर्ट ऑफ डायरेक्टर पर सीधा नियंत्रण स्थापित कर दिया गया।''

''इस ऐक्ट ने कम्पनी के उन शेयर होल्डरों (हिस्सेदारों) को, जिनके पास चुनाव तिथि 12 महीने पूर्व 1,000 पौण्ड का माल था, कम्पनी के डायरेक्टरों के चुनाव के लिए मताधिकार प्रदान किया।'' जबकि पूर्व में 500 पौण्ड के षेयर धारकों को कम्पनी के डायरेक्टरों को चुनने का अधिकार था। इतिहासकार ना0 वि0 परांजपे ने लिखा है – ''मत क्षमता एक हजार पौण्ड तक एक थी, परन्तु तीन हजार पौण्ड पर दो तथा छः हजार पौण्ड पर तीन मत दिये जा सकते थे। अंश राशि दस हजार या उससे अधिक होने पर अंशधारी (शेयर होल्डर) को चार मतों की पात्रता मिल जाती थी।''

''डायरेक्टरों की कुल संख्या 24 निश्चित की गयी। उनकी पदवियों में स्थिरता स्थापित करने के लिए उनकी अवधि चार साल निश्चित की गई, किन्तु प्रतिवर्ष चौथा भाग रिटायर हो जायेगा। यह कदम इसलिए उठाया गया था कि कम्पनी की नीति में स्थिरता रह सके।'' शेयर होल्डर्स की न्यूनतम राशि में वृद्धि करके उनकी आम सभा का स्तर बढ़ाने का प्रयत्न किया गया था, जिससे डायरेक्टर का चयन अधिक जिम्मेदार व्यक्तियों में से किया जा सके। इस प्रकार रेग्युलेटिंग ऐक्ट के प्रथम छः उपबन्ध कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के गठन व उनके निर्वाचन से सम्बन्धित थे। डायरेक्टरों के लिए यह आवश्यक बनाया गया कि भारत से आने वाले सैनिक

तथा सिविल विषयों से सम्बन्धित पत्रों की कापियां सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को तथा राजस्व सम्बन्धी नकलें वजीर खजाना को पेश करें। इस धारा द्वारा कम्पनी के कार्यों पर पार्लियामेंट का नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की गयी।

न्याय प्रशासन को प्रभावी बनाने की दृष्टि से रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अर्न्तगत कलकत्ता के मेयर कोर्ट के स्थान पर वहां एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इतिहासकार जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है – "इस अधिनियम के द्वारा बंगाल में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गयी। ब्रिटेन के सम्राट द्वारा मनोनीत एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीशों को इसके सदस्य बनाने का निश्चय किया गया। इस न्यायालय का अधिकार बंगाल सूबा था।" इतिहासकार के0 के0 श्रीवास्तव ने आगे लिखा है कि "कम्पनी के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखने तथा बंगाल प्रेसीडेंसी में समुचित एवं प्रभावशाली न्याय व्यवस्था की स्थापना के लिए रेग्युलेटिंग ऐक्ट 1773 ने कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित करने की व्यवस्था की। इस ऐक्ट की धारा 13 द्वारा ब्रिटिश सरकार को एक चार्टर जारी करके सुप्रीम कोर्ट की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया गया था।" "यह सर्वोच्च न्यायालय नियमितीकरण अधिनियम के अंतर्गत बादशाह के एक आज्ञापत्र द्वारा 1774 में कलकत्ता में स्थापित हुआ।" मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट के प्रसादपर्यन्त होनी थी, जो उन्हें पदच्युत करने का भी अधिकार रखता था। प्रथम मुख्य न्यायाधीश एलिंग एम्पे का नाम भी इस उपबंध में जोड़ दिया गया था। मुख्य न्यायाधीष को आठ हजार पौण्ड वार्षिक और अन्य तीन न्यायाधीशों में प्रत्येक को छः हजार पौण्ड वार्षिक वेतन निर्धारित किया गया था। इतिहासकार के0के0 श्रीवास्तव का मत है कि "1774 के पूर्व की न्याय व्यवस्था के आधारभूत दोषों का स्रोत था – न्यायपालिका पर कार्यकारिणी का नियंत्रण होना। किन्तु सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधशों की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा होती थी और वे कम्पनी के कर्मचारी नहीं थे। अतः उन पर न तो कम्पनी की कार्यकारिणी सरकार का कोई नियंत्रण था और न ही उन्हें कम्पनी के हितों की रक्षा करने का कोई आकर्षण था। इस प्रकार उनसे निःसंदेह विशुद्ध एवं निष्पक्ष न्याय की आशा की जा सकती थी।"

कम्पनी के कर्मचारियों तथा उसके क्षेत्राधिकार में रहने वाले सभी व्यक्तियों के सभी दीवानी, फौजदारी, धार्मिक एवं जलसेना सम्बन्धी विवादों पर मुकद्दमा चलाने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया गया था। "आपराधिक मामलों में परीक्षण के लिए न्यायालय विशेष जूरी तथा पेटी जूरी की सहायता लेता था।" इतिहासकार पंचम दास मुखर्जी ने लिखा है कि "इन सबके होते हुए भी गवर्नर जनरल, उसकी परिषद के किसी भी सदस्य, मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों पर उनके किसी कृत्य के लिए उन्हें न तो गिरतार किया जा सकता, न ही दण्डित किया जा सकेगा और उन पर मुकद्दमा भी नहीं चलाया जा सकेगा।" यदि परिषद के सदस्य एवं गवर्नर जनरल में से कोई भी अपराध करेगा, तब उसकी सुनवाई ब्रिटिश सम्राट के न्यायालय में होनी तय हुई।

एल0पी0सिन्हा एवं एस0एन0 सिन्हा ने लिखा है कि "गवर्नर जनरल के द्वारा बनाये गये सभी कानून सुप्रीम कोर्ट में रजिस्टर होने के बाद ही चालू किये जा सकते थे। सुप्रीम कोर्ट, गवर्नर जनरल तथा कौन्सिल के द्वारा बनाये गये कानून रद्द भी कर सकता था।" प्रत्येक न्यायालय में अंग्रेज जूरी की भी व्यवस्था की गई थी और यदि इसके द्वारा लिए गये निर्णयों के विरूद्ध अपील करना हो तो वह केवल सम्राट और उसकी परिषद के समक्ष ही की जा सकती थी। "सन्1773 ई0 के पूर्व मेयर कोर्ट ही एक ऐसी व्यवस्था थी, जिससे अपील कलकत्ता की प्रेसीडेन्सी एण्ड काउंसिल एवं उसके बाद इंग्लैण्ड में किंग – इन – काउंसिल को जाती थी। इस अदालत का कार्यपालिका पर कोई नियंत्रण नहीं था, इसी उद्देश्य से रेग्युलेटिंग ऐक्ट में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की व्यवस्था की गई।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों का व्यक्तिगत व्यापार करना अब दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया, साथ ही अब उनके निजी व्यापार को कठोर नियंत्रण के अधीन कर दिया गया। उन्हें भारतीय राजा – महाराजाओं से भेंट आदि लेना मना कर दिया गया। कम्पनी के कर्मचारी निजी व्यापार, घूस, भेंट आदि से दूर रहें, इसके लिए उनके उच्चाधिकारियों के वेतन में बढ़ोत्तरी कर दी गई। उच्च अधिकारी वर्ग जैसे – गवर्नर जनरल, उसकी परिषद के सदस्य तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के निजी व्यापार पर रोक लगा दी गई। अब जो भी अपराधी ऐसा करते थे, उन पर कड़ा आर्थिक दण्ड लगाया जाना था और कम्पनी को धोखा देने वालों तथा सार्वजनिक सम्पत्तियों का गबन करने वालों पर जुर्माने के साथ सजा देने का प्रावधान लागू किया गया।

इतिहासकार रणजीत सिंह दरड़ा ने लिखा है कि "गवर्नर जनरल का बम्बई तथा मद्रास पर नियंत्रण प्रभावशाली नहीं था। कुछ विकट परिस्थितियों में मद्रास और बम्बई की सरकार को

युद्ध की घोषणा करने की आज्ञा दे दी गई थी।" आपात स्थिति में बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेन्सी के गवर्नरों को जो धारा **IX** के तहत सहूलियत मिली हुई थी, के अनुसार गवर्नर जनरल और उसकी परिशद की आज्ञा लिए बिना वे भारत के अन्य राज्यों के साथ युद्ध अथवा सन्धि कर सकते थे। इस प्रकार रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने इन दोनों बम्बई एवं मद्रास प्रेसीडेन्सियों पर गवर्नर जनरल को पूर्ण नियंत्रण का अधिकार नहीं प्रदान किया था। बम्बई तथा मद्रास की सरकारों ने इस प्रावधान का फायदा उठाते हुए बिना गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त किये ही मराठों और हैदरअली के साथ युद्ध लड़े, जबकि इसके लिए बहाना यह बनाया कि ये युद्ध आपात स्थितियों में लड़े गये थे। इन युद्धों के फलस्वरूप कम्पनी को अत्यधिक नुकसान झेलना पड़ा और उसके सम्मान को भी चोट पहुँची। कालांतर में भी कम्पनी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि कुछ अन्य मामलों में भी ये सरकारें कार्य करने को स्वतन्त्र थीं। इस प्रावधान की व्याख्या करते हुए के0के0 श्रीवास्तव ने लिखा है – "उन पर बंगाल सरकार का नियंत्रण प्रभावशाली न हो सका। चूंकि इस प्रकार की छूट स्वयं रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने दे रखी थी, इसलिए शिथिल नियंत्रण का दायित्व इस ऐक्ट पर ही था।"

यह भी रेग्युलेटिंग ऐक्ट में स्पष्ट नहीं था कि सपरिषद गवर्नर जनरल अथवा सर्वोच्च न्यायालय में से कौन किसके अधीन था, अर्थात कौन सर्वोच्च था। कई परिस्थितियों में इस क्षेत्रीय अस्पष्टता ने विवाद की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। जैसे, एक तरफ तो गवर्नर जनरल को मुगल सम्राट ने कई शक्तियां प्रदान की थीं, जिनको गवर्नर जनरल ब्रिटिश संसद के समक्ष ठीक तरह से स्पष्ट नहीं कर सका, जबकि सर्वोच्च न्यायालय को भी यह अधिकार प्रदान किया गया था कि सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा बनाई गई विधि को वह रद्द कर सकता था। "उच्चतम न्यायालय का यह दावा था कि वह देश के सभी निवासियों को नोटिस भेज सकता है तथा उन्हें न्यायालय में उपस्थित होने के लिए विवश कर सकता हैं। वारेन हेस्टिंग्स ने इस दावे का विरोध किया। इस कारण से गवर्नर जनरल और सुप्रीम कोर्ट के सम्बन्ध कभी अच्छे नहीं रहे।"

इसी अध्यादेश के नियमों के तहत एक विवाद तब उत्पन्न हो गया, जब कम्पनी के अधीन एक जमींदार, जो कासिजोरा का राजा था, ने काशीनाथ बाबू नामक व्यक्ति से एक बड़ी धनराशि कर्ज के रूप में जी थी, परन्तु जब काशीनाथ को उसकी धनराशि न मिली, तो उसने 13 अगस्त, 1779 ई0 को सुप्रीम कोर्ट में मुकद्दमा दायर कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के एक जज माननीय हाड़ा महोदय ने राजा के विरूद्ध एक आदेश जारी कर दिया और स्वयं गवर्नर जनरल ने राजा को यह जानकारी उपलब्ध करायी कि वह आदेश को अनदेखा कर दे क्योंकि वह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। जब सर्वोच्च न्यायालय के कर्मचारी कासिजोरा के राजा को गिरतार करने के लिए आये तो उन्हें गवर्नर जनरल ने पकड़ने

का आदेश जारी कर दिया। गवर्नर जनरल और सर्वोच्च न्यायालय के मध्य होने वाले विवाद के कारण कम्पनी की सरकार को हानि पहुंचती थी।

रेग्युलेटिंग ऐक्ट की उपधाराओं में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों और उसके अधिकार क्षेत्रों को स्पष्टतः रेखांकित नहीं किया गया था। उदाहरण के तौर पर देखें तो 'ब्रिटिश प्रजा' शब्द की शब्दशः व्याख्या भी इस अधिनियम में नहीं की गई थी। इस शब्द का अभिप्राय तत्कालीन न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए असमंजस का विषय था कि 'ब्रिटिश प्रजा' से तात्पर्य केवल अंग्रेजी प्रजा से है या कलकत्ता के निवासियों से है अथवा बंगाल, बिहार और उड़ीसा में रहने वाली समस्त भारतीय प्रजा से है। जबकि वे देश के सभी निवासियों के मुकद्दमे सुनने और निर्णय देने के अधिकार का दावा करते थे। गवर्नर जनरल एवं उसकी परिशद सर्वोच्च न्यायालय के इस प्रकार के किसी भी दावे को मानने से इंकार करती थी। इसी तरह की एक और समस्या यह थी कि "सर्वोच्च न्यायालय में अंग्रजी कानून लागू होता था तथा बंगाल की दीवानी अदालतों में स्थानीय कानून। इनके आपसी सम्बन्धों में अनियमितता थी। इस समस्या का समाधान कुछ हद तक 1881 ई0 के घोषणात्मक अधिनियम के द्वारा किया गया।"

रेग्युलेटिंग ऐक्ट मे यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था कि वे कार्यक्षेत्र में 'किस विधि' का प्रयोग करेंगे, जबकि भारत में कम से कम तीन धर्मों हिन्दू, मुस्लिम और अंग्रेज लोगों की बहुतायत थी। अतः यह स्पष्ट करना जरूरी था कि हिन्दू कानून (शास्त्रों के अनुसार), शरियत या अंग्रेजी कानूनों में से न्यायालय किन वैध कानूनों का प्रयोग करे, जबकि यह विदित है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश केवल अंग्रेजी कानूनों से परिचित थे और वे न तो हिन्दू प्रजा के रीति–रिवाजों को जानते थे और न ही मुसलमानों की रीतियों को समझते थे। इस तरह की अस्पष्टता के कारण भारतीय प्रजा, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग आते थे, को बहुत अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ा, क्योंकि न्यायाधीश अंग्रेजी कानूनों के तहत ही निर्णय देते एवं मुकद्दमा चलाते थे। जिसके कारण वे अपने पक्ष को ठीक ढंग से रख नहीं पाते थे, फलतः वांछित न्याय नहीं प्राप्त कर पाते थे। इस तरह की स्थिति केवल गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद के साथ ही नहीं थी, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय की अपने अधीनस्थ प्रादेषिक न्यायालयों के साथ भी थी, जहां पर उनके क्षेत्राधिकारों को इस ऐक्ट द्वारा स्पष्ट तरीके से मार्गदर्शित नहीं किया गया था।

इस ऐक्ट के एक उपबन्ध, जिसमें कम्पनी के संचालकों के चुनाव सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया गया था। इस नियम के कारण भी इंग्लैण्ड में मताधिकार के प्रयोग के दौरान भ्रश्टाचार की संभावनायें बन गयी थीं। इतिहासकार प्रो0 (डॉ0) जी0 पी0 त्रिपाठी ने लिखा है – "मतदान का अधिकार केवल उन्हीं सदस्यों को दिया गया, जिनके पास कम से कम 1,000 पौंड की अमानत हो। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर में 2,000 पौंड की क्षमता रखी गई। मतदान के अभिप्राय से अर्जित या विवार्जित या परिवर्तित संपदा कठिन सजाओं द्वारा निषिद्ध व अवैध घोषित की गई। कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्स में मतक्षमता 1,000 पौंड तक एक ही थी, परन्तु 3 हजार पौंड पर दो तथा 6 हजार पौंड अमानत पर 3 मत तक दिये जा सकते थे। 10 हजार पौंड या उसके ऊपर 4 मतों की क्षमता उपलब्ध थी। इस तरह निर्वाचन कार्य–अवधि व सदस्यता में परिवर्तन लाया गया।" इस सबके कारण कंपनी के संचालक मंडल में एक तरह का स्थायित्व आ गया था, जिसे 'स्थायी अल्पतंत्र' कहा जाता है। इस उपबन्ध के सम्बन्ध में रॉबर्ट्स ने लिखा है – "साधारणतः इसकी उपधारा (संचालक मण्डल के विधान में परिवर्तन से सम्बन्धित) अपने उद्देश्य में विफल हुई।"

रेग्युलेटिंग ऐक्ट का एक बड़ा दोष यह भी था कि उसने कंपनी पर संसद को पूर्ण नियंत्रण नहीं प्रदान किया था। इतिहासकार जी0 एस0 पाण्डेय ने लिखा है – "गवर्नर जनरल एवं कौंसिल डायरेक्टर्स के प्रति उत्तरदायी थे। डायरेक्टरों से अपेक्षा की गई

कि भारत से गवर्नर जनरल के माध्यम से जो भी पत्राचार हो, उसकी प्रतिलिपियां वे ब्रिटिश सरकार को भेजें।'' कम्पनी तो अपनी समस्त रिपोर्टें सरकार के पास भेजती थी, किन्तु सरकार ने इन रिपोर्टों की जांच की कोई उत्तरदायी व्यवस्था नहीं स्थापित की हुई थी। गवर्नर जनरल अपनी परिषद के सामने शक्तिहीन था, जो कार्यपालिका की दुर्बलता का द्योतक था। इसी प्रकार सपरिषद गवर्नर जनरल, सर्वोच्च न्यायालय के समाने षक्तिहीन स्थिति में था। न्यायापालिका ही कार्यपरिशद द्वारा बनाये गये अधिनियमों एवं कानूनों को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार रखती थी। सन् 1773 ई0 के अधिनियम में अनेक उपबन्ध अस्पष्ट थे तथा उनमें ऐसे तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया गया था, जिनकी निश्चित व्याख्या करना कठिन था। उदाहरण के लिए ऐक्ट के शब्द 'नेटिव' की व्याख्या संदेहास्पद थी तथा यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन था कि किस देशी भारतीय व्यक्ति को इस श्रेणी में माना जाए।

बंगाल न्यायालय ऐक्ट 1781 ई0 के तहत इन दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया। इसमें सपरिषद गवर्नर जनरल को रेग्युलेटिंग ऐक्ट में दी गई शक्तियों की अपेक्षा अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई, साथ ही उसकी शक्तियों में स्पष्ट विस्तार कर दिया गया। जिस समय रेग्युलेटिंग ऐक्ट पारित किया गया, उस समय की स्थितियां भी काफी हद तक इसकी अपूर्णता के लिए जिम्मेवार थीं। ''प्रथम, ब्रिटिश संसद को सन् 1773 ई0 में एक ऐसी समस्या को सुलझाना पड़ा, जो एकदम नयी थी। कानूनी रूप में ब्रिटिश कंपनी अपने आपको मुगल सम्राट का दीवान कहती थी और इसलिए संसद के लिए बहुत कठिन हो गया कि कंपनी के शासन में प्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली सुधार कर सके। दूसरा, भारतीय प्रदेशों का प्रशासन कंपनी के हाथों में था न कि ब्रिटिश ताज के हाथों में। अतः संसद कंपनी के मामलों में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।'' तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार नेइस ऐक्ट के द्वारा किसी ऐसे पद या विभाग को स्थापित नहीं किया था, जो निष्पक्ष सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए उत्तरदायी होता, जबकि स्थिति इतनी दयनीय थी कि ब्रितानी संसद के सदस्य भारत एवं भारतीय विषयों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते थे। कम्पनी के कर्मचारी ही इस कमी को दूर कर सकते थे, किन्तु वे अपनी रिश्वतखोरी जैसी भ्रष्टाचारिक गतिविधियों के कारण इतने कुप्रसिद्ध हो गये थे कि उन पर विश्वास करना ब्रिटेन की संसद के लिए और अधिक मुश्किलें पैदा कर देता। इस ऐक्ट में यह एक बड़ा देाष था, जिसे दूर करना आवश्यक था।

रेग्युलेटिंग ऐक्ट में विद्यमान दोषों को कमतर नहीं आंका जा सकता है, लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लार्ड नॉर्थ ने निश्चित तौर पर सराहनीय प्रयास किया था। इतिहासकार आर0 एल0 शुक्ल का मत है – ''इस प्रकार रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने व्यापारिक कंपनी को वैधानिक रूप से राजनीतिक अधिकार प्रदान किया तथा प्रेसीडेंसी प्रशासन पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण स्थापित किया।'' ब्रिटेन की संसद ने पहली बार कंपनी पर इस ऐक्ट के द्वारा ठोस नियंत्रण स्थापित किया था, वहीं भारत के संवैधानिक इतिहास का यह पहला बड़ा कदम था, अतः इसका संवैधानिक महत्व अत्यधिक है। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने कंपनी के राजनैतिक कार्यों को वैधता प्रदान की। यह भी स्पष्ट कर दिया कि कंपनी भारत में केवल अब कोई व्यापारिक संस्थान भर नहीं अपितु एक राजनीतिक शक्ति भी है, जिसके पास राजनैतिक अधिकार भी सुरक्षित हो गये थे।

कंपनी के संचालकों के कार्यकाल को बढ़ाने का यह लाभ हुआ कि अब वे निश्चिंत होकर कंपनी के राजनैतिक एवं आर्थिक विकास में सहायक बन गये थे। कंपनी के शीर्ष पदाधिकारियों की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट के प्रसादपर्यन्त होने लगी। ये शीर्ष पदाधिकारी गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद के सदस्य तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। जिसके कारण ब्रिटेन की सरकार का नियंत्रण कंपनी तथा कम्पनी के कर्मचारियों पर बढ़ गया था। साथ

ही भारतीयों में यह एक सकारात्मक बदलाव यह देखने को मिला कि कंपनी के कर्मचारियों के अत्याचार समाप्त हो गये थे। नियंत्रण का अंत तब हुआ, जब 1858 ई0 में कम्पनी के शासन का पूर्णरूपेण अंत कर दिया गया।

भारत के संवैधानिक विकास में इस ऐक्ट को 'अग्रदूत' कहा जाता है, क्योंकि पहली बार कम्पनी द्वारा अधिकृत प्रदेशों पर एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली का जन्म हुआ, जिसके अपने नियम, कानून और अध्यादेश थे। इतिहासकार प्रो0 (डॉ0) जी0पी0 त्रिपाठी का मत है – "सुप्रीम कोर्ट की स्थापना एक महत्वपूर्ण प्रयास था। जो उद्देश्य स्वयं ब्रिटेन में ठीक 100 वर्ष बाद सन् 1873–75 में जुडिकेचर ऐक्ट द्वारा परिपूर्ण हुआ, उसी का प्रयोग अंग्रेजों ने भारत में सन् 1774 ई0 में सुप्रीम कोर्ट के द्वारा किया।" इस ऐक्ट में एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह किया गया था कि इसने कंपनी के भ्रष्टाचार, निजी व्यापार और भेंट आदि ग्रहण करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इतिहासकार ना0 वि0 परांजपे ने लिखा है – "इस अधिनियम की धारा 39 के अनुसार रेग्युलेटिंग ऐक्ट के प्रावधानों के विरूद्ध किये गये कार्यों के लिए दोषी व्यक्ति को ब्रिटिश सम्राट की न्याय – परिषद दण्डित कर सकती थी।"

केन्द्रीय कार्यकारिणी का शुभारम्भ हुआ, जिसका विकास समय के साथ हुआ। यहां भारत में प्रशासन के केन्द्रीय तत्व को पहली बार समाहित कर भारतीय प्रशासन को एक नई दिशा प्रदान की गई। इसी प्रकार बंगाल के अधीन बम्बई एवं कलकत्ता प्रेसीडेन्सियों को कर देने से पूरे ब्रिटिश भारत को भी एकीकृत करने का प्रयास किया गया। ब्रिटिश कंपनी के विभिन्न केन्द्रों पर ब्रिटिश सम्राट की सत्ता को स्थापित कर दिया गया। इतिहासकार डा0 परमात्मा शरण का मत है कि "1773 के अधिनियम ने भारतीय प्रशासन के एकीकरण में पहला कदम उठाया।"

ब्रिटिश सरकार ने यूरोप के बाहर पहली बार शासन – सत्ता का उत्तरदायित्व ग्रहण किया था। इस विषय पर जी0एन0 सिंह का मत है कि – "पार्लियामेण्ट को जिस समस्या का समाधान करना पड़ रहा था, उसके दोषपूर्ण होने का मुख्य कारण समस्या का अनूठापन था। इसके कई बड़े दोष प्राणनाशक थे, फिर भी यह ब्रिटेन के लिए भाग्यशाली रहा।"

इतिहासकार जी0 एस0 पाण्डेय का मत है – "यह भारतीय सरकार का प्रथम संविधानिक दस्तावेज था और इसने पहली बार कम्पनी की राजनैतिक शक्तियों को परिभाषित किया तथा उन पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये।"

इतिहासकार दरड़ा रणजीत सिंह का मत है कि – "इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश भारत में लिखित संविधान प्रणाली का प्रारंभ हुआ।" कम्पनी के उद्देश्यों के साथ–साथ उसके अस्तित्व को भी वैधता प्रदान की गई। इतिहासकार प्रो0 (डॉ0) जी0पी0 त्रिपाठी का मत है – "ब्रिटेन की संसद का भारतीय शासन–व्यवस्था में इस व्यवस्था द्वारा यह प्रथम सरकारी दखल था, जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में कार्यकाल की लगभग अपनी शताब्दी पूरी कर चुकी थी।" यह अधिनियम आगे के अधिनियमों के लिए एक आधारभूत ढांचा था, जिस पर आगे बनने वाले अधिनियमों की रूपरेखा तैयार होनी थी। इसने एंग्लो – प्रशासनिक ढांचे की आधारषिला रखी। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के विषय में वॉटन रॉस का मत है – "ऐक्ट का उद्देश्य अच्छा था, किन्तु इसके द्वारा स्थापित व्यवस्था दोषपूर्ण थी।" पुनिया ने लिखा है – "रेग्युलेटिंग ऐक्ट भारतीय मामलों से सम्बन्धित अपने प्रकार का पहला दस्तावेज था और इसके कुछ दोष लेखकों की अनुभवहीनता के कारण भी थे।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आनन्द, सी0 एल0, गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया, पृ0 13.
2. वर्मा, कन्हैया लाल, भारतीय शासन, पृ0 2–3.
3. पान्डेय, जय नारायण, भारत का संविधान, पृ0 – 14.

4. मलिक, योगेन्द्र एवं आर0 एल0 भाटिया, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास, पृ0 7–8.
5. मिश्रा, आर0एन0, भारत का संवै0 विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 14.
6. जैन, एम0 पी0, आउटलाइन्स ऑफ इण्डियन लीगल हिस्ट्री, खण्ड–दो, पृ0 99.
7. मिश्रा, आर0 एन0, भारत का संवै0 विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 15.
8. मलिक, योगेन्द्र – आर0एल0 भाटिया, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास, पृ0 9.
9. भगवान, विष्णु, इंडियन कंस्टीट्यूशनल डेवेलपमेंट, भाग – 1 पृ0 11.
10. मिश्रा, जगन्नाथ प्रसाद, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 109.
11. त्रिपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 5.
12. मिश्रा, जगन्नाथ प्रसाद, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 109.
13. मलिक, योगेन्द्र – आर0एल0 भाटिया, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास, पृ0 10.
14. त्रपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 77.
15. दरड़ा, रणजीत सिंह, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ0 27.
16. बैनर्जी, ए0सी0, इण्डियन कॉंस्टीट्यूशनल डाक्यूमेण्ट्स, खण्ड 1, पृ0 21.
17. पान्डेय, जय नारायण, भारत का संविधान, पृ0 – 04.
18. सेक्शन 9, रेग्युलेटिंग ऐक्ट।
19. मलिक, योगेन्द्र – आर0एल0 भाटिया, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास, पृ0 14.
20. मिश्रा, आर0एन0, भारत का संवै0 विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 18.
21. शरण, परमात्मा, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान, पृ0 9.
22. अग्रवाल, आर0 सी0, भारत का संवैधानिक का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ0 9.
23. त्रिपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 76–77.
24. मिश्रा, आर0एन0, भारत का संवै0 विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 16.
25. परांजपे, ना0 वि0 भारतीय विधि का इतिहास, पृ0 100.
26. मलिक, योगेन्द्र – आर0एल0 भाटिया, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास, पृ0 12.
27. मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 111.
28. श्रीवास्तव, के0के0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 44.
29. गुप्त, मदन मोहन, भारत – नये संविधान तक, पृ0 04.
30. श्रीवास्तव, के0के0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 46.
31. परांजपे, ना0 वि0, भारतीय विधि का इतिहास, पृ0 104.
32. मुखर्जी, पी0डी0, इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल डाक्यूमेण्ट्स, खण्ड 1, पृ0 23.
33. सिन्हा, एल0पी0 एवं सिन्हा, एस0एन0, भारत का संविधान, पृ0 14.
34. त्रिपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 78.
35. दरड़ा, रणजीत सिंह, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ0 31.
36. श्रीवास्तव, के0के0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 249.

37. मिश्रा, रवीन्द्र नाथ, भारत का संवैधानिक विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 18.
38. शुक्ल, आर0 एल0, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 89.
39. त्रिपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 76.
40. रॉबर्ट्स, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड – 5, पृ0 119.
41. पान्डेय, जी0एस0, भारतीय संविधान, पृ0 – 13.
42. दरड़ा, रणजीत सिंह, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ0 32.
43. शुक्ल, आर0 एल0, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 89.
44. त्रिपाठी, जी0पी0, भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ0 82.
45. परांजपे, ना0 वि0 भारतीय विधि का इतिहास, पृ0 105.
46. शरण, परमात्मा, भारत का राश्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान, पृ0 10.
47. सिंह, जी0 एन0, लैण्डमार्क्स इन इण्डियन कांस्टीट्यूशनल एण्ड नेषनल डेवलपमेण्ट, पृ0 18–19.
48. पान्डेय, जी0एस0, भारतीय संविधान, पृ0 – 12.
49. दरड़ा, रणजीत सिंह, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ0 28.
51. त्रिपाठी जी0 पी0, भारत का वैधानिक व संवैधानिक इतिहास, पृ075.
52. भगवान, विष्णु, इंडियन कंस्टीट्यूशनल डेवेलपमेंट, पृ0 11.